

लेखन के माध्यम से पाठ्यपुस्तक के विचार का विस्तार

मुरारी झा



परिचय

मुख्यधारा के स्कूलों की कक्षा के सामने यह चुनौती कभी नहीं आती कि क्या पढ़ाया जाए, क्योंकि उनके पास हमेशा एक निर्धारित पाठ्यक्रम होता है और खासकर जब पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक शब्द एक-दूसरे का पर्याय बन गए हों तब तो दिक्कत की कोई बात ही नहीं होती। लेकिन पाठ्यक्रम का सन्दर्भीकरण हमेशा ही चुनौती का विषय रहा है। बतौर शिक्षक हमें स्कूल में अपने बच्चों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन करना होता है। हम विविधतापूर्ण राष्ट्र का हिस्सा हैं और इसलिए किसी भी संस्थान के लिए एक ऐसा पाठ्यक्रम विकसित करना सम्भव नहीं है जो इस देश में रहने वाले लोगों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करता हो। पाठ्यक्रम के सन्दर्भीकरण में स्कूल और शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

निम्नलिखित अनुच्छेद में विंच (Winch) पाठ्यक्रम को बच्चों के सन्दर्भ में मज़बूत आधार देने के महत्व के बारे में बात करते हैं ताकि पाठ्यक्रम लोगों के विविध समूह की आवश्यकताओं को पूरा कर सके :

“यदि युवा लोगों को वयस्क जीवन के लिए तैयार रहना है तो मज़बूत आधार आवश्यक है। लेकिन कोई व्यक्ति किस तरह का जीवन जिएगा, यह बात कई प्रकार के कारकों पर निर्भर होती है, और इसके लिए यह वांछनीय है कि उनमें से कई कारक सम्बन्धित व्यक्ति के नियंत्रण में हों। यह बात विशेष रूप से वांछनीय है कि लोगों को एक ऐसा जीवन जीना चाहिए जिसमें उनकी क्षमताओं का सर्वोत्तम उपयोग सम्भव हो सके ताकि वे और अन्य लोग भी फल-फूल सकें। सम्भावित व्यवसायों की विविधता और लोगों की विभिन्न क्षमताओं तथा रुचियों की विविधता को देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि वे सभी वयस्क जीवन के लिए किसी एक ही तरीके की तैयारी से लाभान्वित होंगे”। (विंच सी, पृ; 51)

हम पाठ्यपुस्तक के माध्यम से पाठ्यक्रम को सम्पादित करते हैं और पाठ्यपुस्तकीय संस्कृति भारत में बहुत प्रभावी है। भारत में शिक्षा की स्थिति और निर्धारित पाठ्यक्रम के रूप में पाठ्यपुस्तक की प्रधानता पर चिन्तन करते हुए एक सदी पहले एम.के. गाँधी ने लिखा था :

“यदि पाठ्यपुस्तकों को शिक्षा का साधन समझ लिया जाए तो शिक्षकों की सक्रिय दुनिया का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। जो शिक्षक पाठ्यपुस्तक से पढ़ाता है, वह अपने विद्यार्थियों में मौलिकता का बीज नहीं बो सकता। सच पूछा जाए तो वह पाठ्यपुस्तक का गुलाम बन जाता है और उसके पास मौलिक बने रहने का कोई अवसर या कारण नहीं रह जाता। इसलिए ऐसा लगता है कि कम पाठ्यपुस्तकों का होना शिक्षक और उनके विद्यार्थियों के लिए बेहतर है” (एम. के. गाँधी, हरिजन 9 सितम्बर, 1913)

इसे और स्पष्ट करते हुए कृष्ण कुमार (1988) लिखते हैं : “पाठ्यपुस्तक संस्कृति पर आधारित शिक्षा प्रणाली में, शिक्षकों को पाठ्यचर्या के व्यवस्थापन, गति और अन्तिम मूल्यांकन के तरीके में कोई विकल्प नहीं दिया जाता है। प्रत्येक विषय के लिए पाठ्यपुस्तकें निर्धारित की जाती हैं और शिक्षिका से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दिए गए क्रम में हर पाठ को स्पष्ट करें; वह यह सुनिश्चित करें कि बच्चे पाठ्य (text) को देखे बिना पाठ्यपुस्तक के किसी भी पाठ के आधार पर प्रश्नों के उत्तर लिखने में सक्षम हों क्योंकि जब वे परीक्षा देने जाएँगे तब अन्ततः उन्हें यही तो करना होगा।” (कुमार, पृष्ठ 452)

एनसीएफ़ (2005) उन शिक्षकों की बात करता है जो पाठ्यचर्या में जान डाल सकते हैं।

“सीखने की प्रक्रिया में रत एक बालक या बालिका अपने ज्ञान का सृजन खुद करता/ती है। बच्चों को ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति देना जिनसे वे स्कूल में सिखाई जाने वाली चीज़ों का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से स्थापित कर सकें, उन्हें एक ही तरीके से उत्तर

रटने और देने की बजाए उन्हें अपने शब्दों में जवाब देने और अपने अनुभव बताने के लिए प्रोत्साहित करना – ये सभी बच्चों की समझ विकसित करने में छोटे किन्तु बेहद महत्वपूर्ण कदम हैं।” (एनसीएफ 2005, पृ. 17)।

रोचक बात यह है कि पाठ्यचर्या की जितनी भी परिभाषाएँ दी गई हैं उनमें से अधिकांश परिभाषाओं में बच्चों की आवाज़ नदारद है। लगता है कि वयस्क लोगों के ज्ञान को विद्यार्थियों पर थोप दिया गया है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि पाठ्यचर्या के निर्माण में शिक्षकों और विद्यार्थियों की आवाज़ शामिल ही नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में आलोचनात्मक विचारधाराएँ भी पाठ्यचर्या निर्माण में बच्चों और शिक्षकों की आवाज़ को शामिल करने के तर्क का समर्थन करती हैं।

बतौर एक शिक्षक मुझे हमेशा यही लगता है कि पाठ्यपुस्तक से पाठ पढ़कर सुनाना किसी रस्म को निभा देने जैसा है और इससे कोई लाभ नहीं होता। मैंने हमेशा कुछ ऐसी क्रियाविधियों को विकसित करने की कोशिश की है जो विद्यार्थियों को अपने स्वयं के अर्थ गढ़ने में मदद करें। इस सन्दर्भ में मैंने अपने विद्यार्थियों से दैनिक लेखन कार्य करवाना शुरू किया।

यह सब कैसे शुरू होता है?

दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में शिक्षक के रूप में मेरे सामने एक बड़ी चुनौती यह है कि बच्चे लेखन के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं। परम्परागत रूप से, उन्हें लिखने के नाम पर जो प्रशिक्षण दिया जा रहा है, वह ब्लैकबोर्ड या पाठ्यपुस्तक से, किसी पुस्तक की सहायता लेते हुए या किसी अन्य विद्यार्थी की नोटबुक से टेक्स्ट की नकल करने तक सीमित है। यदि विद्यार्थियों से स्वतंत्र रूप से कुछ वाक्य लिखने के लिए कहा जाए तो उन्हें यह बहुत मुश्किल लगता है और अकसर वे यह बहाना बनाते हैं कि उन्होंने इसे याद नहीं किया है।

मैं चाहता था कि मेरे विद्यार्थी लिखना सीखें।

मेरा मतलब यह नहीं है कि वाक्य कैसे लिखें या व्याकरणिक रूप से सही वाक्य कैसे लिखें। लेखन से मेरा अभिप्राय यह है कि मेरे विद्यार्थी लेखन के माध्यम से अपनी राय और विचार व्यक्त करने में सक्षम हो जाएँ।

मैंने क्या किया

मेरा मानना है कि यदि विद्यार्थी को अपनी पसन्द के विषय पर लिखने के लिए कहा जाए तो उनके लिए प्रतिदिन एक पृष्ठ लिखने की शुरुआत करना आसान होगा। मुझे पता था कि कक्षा में कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जो लिखना नहीं जानते और केवल कहीं और से नकल करके लिख सकते हैं। ऐसे विद्यार्थियों की दिक्कत को ध्यान में रखते हुए मैंने उन विद्यार्थियों को कहीं और से नकल करने की अनुमति तो दी लेकिन साथ ही मैंने यह भी कहा कि मैं बिना नकल किए हुए लिखे को पसन्द करूँगा और उसे ही प्रोत्साहित करूँगा। इस स्तर पर, मेरे दिमाग में स्पष्ट रूप से दो उद्देश्य थे : विद्यार्थियों को अपना लेखन कौशल बढ़ाने के लिए नियमित रूप से लिखने के लिए प्रोत्साहित करना, और उन्हें स्वतंत्र रूप से लिख पाने में सक्षम बनाना ताकि वे परीक्षा में आसानी से उत्तर दे सकें।

चूँकि विद्यार्थियों को इस तरह के काम की आदत नहीं थी, इसलिए उन्हें यह सब बहुत मुश्किल लगा और उन्होंने आग्रह किया कि उन्हें लिखने के लिए कोई विषय दिया जाना चाहिए, लेकिन मैं विषय न देने की अपनी बात पर अड़ा रहा। मेरा मानना था कि विषय देकर उसके बारे में लिखने की कुछ सीमाएँ होती हैं। एक तो यह कि विषय देने से सभी विद्यार्थी उस एक विषय पर लिखने के लिए प्रेरित होंगे जिसे लेकर कुछ तो सहज हो सकते हैं और कुछ नहीं। दूसरे, मैंने पाया कि किसी विषय के बारे में लिखने के लिए सोचना अपने आप में एक अद्भुत यात्रा है क्योंकि यह उनकी विचार प्रक्रिया की शुरुआत है। उनमें से कई विद्यार्थियों ने अपने लेखन के ज़रिए बताया है कि लिखने के लिए किसी विषय को चुनना कितना कष्टदायक है! शुरुआत में मैंने उन चीज़ों के बारे में विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया जिनके बारे में मैं उनसे लिखने की अपेक्षा



करता हूँ और सुझाव दिया कि वे अपने लेखन की शुरुआत करने के लिए अपनी देखी हुई किसी फ़िल्म की कहानी लिख सकते हैं, किसी धारावाहिक की कहानी लिख सकते हैं या घर से स्कूल और स्कूल से घर आते-जाते समय जो कुछ देखते हैं, उसके बारे में या अपने आस-पास चल रही तरह-तरह की बातों आदि के बारे में लिख सकते हैं।

उन्होंने इस तरह के विषयों पर लिखना शुरू किया और मेरे द्वारा दिए गए फ़ीडबैक के आधार पर धीरे-धीरे वे अपने लेखन कौशल को सुधारते रहे। यहाँ पर हम इस गतिविधि को करने में आने वाली कठिनाइयों का एक नमूना देखते हैं।

सातवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में एक अध्याय है- *ग्रोइंग अप एज़ बॉयज़ एंड गर्ल्स*।

इस पाठ में अन्तर्निहित विचार यह है कि विद्यार्थियों को लैंगिक रूढ़ियों के बारे में जागरूक किया जाए और यह बताया जाए कि लैंगिक समानता के आधार पर समाज का निर्माण कैसे किया जाए। इस अध्याय में प्रशान्त महासागर के सामोआ द्वीप में बड़े हो रहे एक लड़के और लड़की की कहानी बताई गई है। इसी अध्याय में 1960 के दशक में मध्य प्रदेश के एक गाँव में एक लड़के के बड़े होने की कहानी भी है।

मुझे लगा कि इन कहानियों से विद्यार्थियों को उनके अपने जीवन की लिंग से सम्बन्धित वास्तविकताओं पर चिन्तन करने में मदद मिलेगी और इसलिए मैंने उन्हें इसे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। लेकिन यह आसान नहीं था। तब मैंने अपनी कहानी साझा की कि लिंग के बारे में मेरी समझ क्या है और मैं अपने आस-पास और अपने परिवार में भेदभावपूर्ण व्यवहारों को कैसे देखता हूँ। मैंने उन्हें कमला भसीन द्वारा लिखित *लड़का क्या है लड़की क्या है* पुस्तक भी पढ़कर सुनाई।

इन प्रयासों के बाद कुछ विद्यार्थियों ने लिखना शुरू कर दिया। एक विद्यार्थी ने अपने व्यक्तिगत अनुभव के बारे में लिखा कि उसके पड़ोस में एक लड़के और लड़की के साथ अलग-अलग तरह का व्यवहार किया जाता है, जिसका शीर्षक था 'अपने आस-पास लड़के तथा लड़कियों से भेदभाव'।

“मेरे पड़ोस में एक चाचा और चाची रहते थे। उनके दो बेटे और एक बेटी थी। लड़की 12 साल की थी, छोटा लड़का 11 साल का और बड़ा वाला 14 साल का था। उन्होंने अपनी बेटी को केवल सातवीं कक्षा तक पढ़ने की अनुमति दी। उनका बेटा नौवीं कक्षा में पढ़ता था। एक बार उनके परिवार में किसी बात पर झगड़ा शुरू हो गया। उस दिन लोगों को पता चला कि उनकी बेटी आगे पढ़ना चाहती है लेकिन उसे पढ़ने की अनुमति नहीं दी गई। वे केवल अपने बेटों को पढ़ाई करने की अनुमति दे रहे थे। वे हमेशा अपने बेटे को सैर के लिए बाहर ले जाते थे। बेटी को बाहर जाने की अनुमति नहीं थी।”

पन्द्रह दिनों में ही, मैंने देखा कि विद्यार्थी अपने परिवेश में होने वाली घटनाओं को कक्षा में पढ़ाई जाने वाली बातों के साथ जोड़ पा रहे थे। वैसे विद्यार्थियों को शुरू में अपने स्वयं के जीवन के अनुभवों पर चिन्तन करने में बहुत समय लगता है।

कभी-कभी मैंने यह भी देखा कि उन्होंने मासिक धर्म के दौरान अपने परिवार में होने वाली भेदभावपूर्ण प्रथाओं के बारे में लिखा और अपनी माताओं से इस बारे में प्रश्न भी किए। यहाँ इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यह एक प्रक्रिया है और विद्यार्थी अपने जीवन के अनुभवों पर चिन्तन करना तब शुरू करते हैं जब वे अपने शिक्षकों को ऐसा करते हुए देखते हैं।

मैंने यह कैसे सुनिश्चित किया कि वे सभी लिख रहे हैं?

मैंने यह सुनिश्चित करने के लिए कई तरीके अपनाए कि सभी विद्यार्थी हर रोज़ लिखें।

कक्षा में मेरा पहला काम यही होता था कि विद्यार्थियों की रचनाओं को देखूँ। धीरे-धीरे विद्यार्थियों को पता चल गया कि पहली बात सर यही पूछते हैं कि आपने एक पृष्ठ लिखा है या नहीं!

मैंने विद्यार्थियों से एक चैकलिस्ट बनाने के लिए कहा ताकि हमें पता चल सके कि कौन लिख रहा है और कौन नहीं। जब कोई विद्यार्थी किसी दिन एक पृष्ठ लिखकर नहीं लाता था तो मैं उससे कारण बताने को कहता था और चैकलिस्ट के द्वारा ही मुझे

यह पता चला कि एक विद्यार्थी कई दिनों से कुछ लिख नहीं रहा था।

कभी-कभी मैं अभिभावकों को बुलाकर उनके बच्चों द्वारा लिखे हुए अब्दुत लेख उन्हें दिखाता और उन्हें बधाई देता था। मैं विद्यार्थियों से पूछता था कि क्या वे चाहते हैं कि मैं पूरी कक्षा के सामने उनके लेख पढ़ूँ। यदि वे हामी भरते तो मैं इसे कक्षा में और कभी-कभी स्कूल की प्रार्थना सभा में भी पढ़कर सुनाता था। मैं उन लेखों की तस्वीर खींचकर शिक्षकों के व्हाट्सएप ग्रुप पर साझा करता था। मैंने चैकलिस्ट के लेखों पर चिन्तन-मनन करना भी शुरू किया।

चूँकि कक्षा में चैकलिस्ट के लेखों पर चर्चा की जाती थी, इसलिए कक्षा की प्रक्रियाओं के साथ उनका जुड़ाव बढ़ा। हम उनकी राय, विचारों और ज्ञान का उपयोग कक्षा की चर्चाओं के लिए मान्य सामग्री के रूप में करते थे। इस अभ्यास ने उन्हें एक ऐसे महत्वपूर्ण एजेंट का स्थान दिया जो ज्ञान के निर्माण में योगदान दे सकते थे और उस सन्दर्भ में, इस प्रक्रिया ने उन्हें ज्ञान के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता से ज्ञान के निर्माण में योगदानकर्ताओं के रूप में बदल दिया।

उनकी लेखनी उनके जीवन में आने वाली विभिन्न चुनौतियों पर प्रकाश डालती है और ऐसी चुनौतियों के बारे में उनकी महत्वपूर्ण जागरूकता को दिखाती

है। चूँकि वे अपनी पसन्द के विषयों पर लिखने के लिए स्वतंत्र थे, इसलिए बहुत से लेखों को पाठ्यक्रम के विस्तार के रूप में नहीं देखा जा सकता था, लेकिन उन्होंने अपने आस-पास के जीवन के बारे में अपनी बढ़ती हुई महत्वपूर्ण चेतना को सिद्ध किया और यही पाठ्यक्रम का अन्तिम उद्देश्य है। इस प्रक्रिया ने कक्षा में शक्ति के आयामों को भी प्रभावित किया : शक्ति के वे आयाम जो शिक्षक और विद्यार्थी के बीच और स्वयं विद्यार्थियों के बीच होते हैं, हालाँकि कई बार उन्होंने अपने लेखों में मेरे पढ़ाने के गैर-परम्परागत तरीके पर भी सवाल उठाए।

बतौर शिक्षक मुझे जो अनुभव हुए उनमें मैंने देखा है कि शिक्षक दो समूहों में विभाजित होते हैं। एक समूह मानता है कि पाठ्यपुस्तकें परम पवित्र हैं और उनके साथ कुछ भी बदलाव नहीं किया जा सकता है। दूसरे समूह का मानना है कि वे पूरी तरह से निरर्थक हैं क्योंकि वे बच्चों की ज़रूरतों की परवाह नहीं करतीं। मेरा प्रस्ताव इस प्रकार है : पाठ्यपुस्तक को जानकारियों का एक स्रोत बना रहने दें, पर *एकमात्र* स्रोत नहीं। पाठ्यपुस्तक में उठाए गए विचारों को अपने स्वयं के प्रयास और अतिरिक्त पाठ्यसामग्री द्वारा आगे बढ़ाएँ! पाठ्यपुस्तक में जो भी गुण हों, उसका मूल्य उस शिक्षक पर निर्भर करता है जो इसका उपयोग करता है।

References

Kumar, K. (n.d.). *Origin of India's textbook Culture. Comparative education review (Vol. 32, p. 452). the comparative and International Education Society.*

N.(2005).NCF2005.New Delhi, Delhi: NCERT.

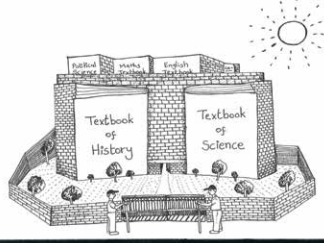
Winch, C. (1996). *Quality and education. Oxford, UK: Blackwell.*

मुरारी झा दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में सामाजिक विज्ञान पढ़ाते हैं। वर्तमान में वे एक सलाहकार शिक्षक हैं और कक्षा-शिक्षण पद्धति को बेहतर बनाने में अपने सहयोगियों की मदद कर रहे हैं। वे पीएचडी कर रहे हैं और उनके शोध का क्षेत्र 'बच्चों की आवाज़ और पाठ्यक्रम' पर आधारित है। 2018 में उन्होंने फुलब्राइट के शिक्षण फेलो के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका का दौरा किया। उनसे murarijha1984@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल पुनरीक्षण : कामिनी उपाध्याय

पाठ्यपुस्तक : एक नज़र में

पाठ्यपुस्तक
कोई संस्था
नहीं है



यह शिक्षा के
कई उपकरणों
में से एक है।

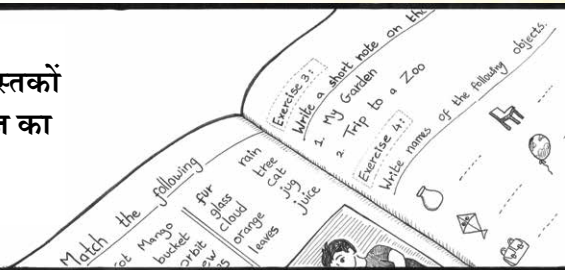


यह कक्षा में
शिक्षक के लिए
सन्दर्भ का एक
स्रोत है।

जिसे आगे की
चर्चा के लिए
खोला जा
सकता है।



यदि पाठ्यपुस्तकों
में ही हर चीज़ का
उत्तर होता...



...तो हमारे चारों
ओर की इस
दुनिया का क्या
अर्थ होता?



ओज़ा वासवी मयंक कुमार
vasvi.oza@apu.edu.in